International Journal of Information Movement *Vol. 9 Issue VII* *(November 2024)*
Website: www.ijim.in *ISSN: 2456-0553 (online)* **Pages 37-44**

योग के सन्दर्भित ग्रन्थों में निहित स्वाध्याय शब्द का अर्थानुशीलन

डॉ० अरविन्द वैदवान
सहायक आचार्य
योग विज्ञान विभाग, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, डोईवाला, देहरादून, उत्तराखण्ड
Email-id : vedwanindiayoga@gmail.com
और
माधुरी
शोधार्थिनी
योग विज्ञान विभाग, स्पर्श हिमालय विश्वविद्यालय, डोईवाला, देहरादून, उत्तराखण्ड
Email-id: drmamtasharmarksh@gmail.com

सारांश:
तप' हमारे शरीर को शुद्ध करते हुए उसे शक्ति प्रदान करता है। शक्ति और शुचिता प्राप्त करना ही 'तप' का उद्देश्य है; परन्तु तप मनुष्य को अहंकारी भी बना सकता है। इसलिए महर्षि पतंजलि ने 'तप' के उपरान्त स्वाध्याय का सूत्र दिया है। स्वाध्याय का मतलब है स्वयं का अध्ययन या अवलोकन करना। कार्यों के पीछे हमारा क्या उद्देश्य है? इस पर ध्यान देना।

स्वाध्याय का अर्थ है आत्म-स्वीकृति और आत्म-विश्लेषण। यह हमें अपनी कमियों को पहचानने और उन्हें दूर करने में मदद करता है। गायत्री मंत्र का मनन और सत्-शास्त्रों का अध्ययन स्वाध्याय के महत्वपूर्ण अंग हैं।

अन्तर्बोध स्वाध्याय का सूक्ष्म मार्ग है, जो हमें आत्म-प्रकृति के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में मदद करता है। गहन सजगता और आत्म-विश्लेषण स्वाध्याय के माध्यम से हमें आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाते हैं।

इस प्रकार, स्वाध्याय और अन्तर्बोध के माध्यम से हम सत्य के मार्ग पर चलकर आत्मसाक्षात्कार कर सकते हैं।

मुख्य शब्द: तप, स्वाध्याय, महर्षि पतंजलि, गायत्री मन्त्र, अन्तर्बोध, गहन सजगता , आत्म-विश्लेषण

1.0 प्रस्तावना

'तप' हमारे शरीर को शुद्ध करते हुए उसे शक्ति प्रदान करता है। शक्ति एवं शुचिता प्राप्त करना ही 'तप' का उद्देश्य है; परन्तु तप मनुष्य को अहंकारी भी बना सकता है। दुर्भाग्यवश तप के उपरान्त मनुष्य स्वयं को बहुत महान समझने लगता है। 'तप' को आवश्यकता से अधिक महिमा मंडित करने से अहंकार में वृद्धि होती है।
इसलिए महर्षि पतंजलि ने 'तप' के उपरान्त स्वाध्याय का सूत्र दिया है। स्वाध्याय अर्थात् स्वयं का अध्ययन

अथवा अवलोकन करना। कार्यों के पीछे हमारा क्या प्रयोजन है? इस पर ध्यान करना। बहुधा जो वस्तु हमें वास्तव में चाहिए, हम उसके लिए प्रयास नहीं करते; अपितु अन्यों को देख अपने जीवन में उन वस्तुओं की अपेक्षा करते हैं, जो हमारे दु:ख का कारण बन जाती है। ज्ञान व शक्ति हमें किसी भी माध्यम से प्राप्त हुई हो, परन्तु जब तक हम उसका मनन नहीं करेंगे, उस पर सहजता से विचार नहीं करेंगे, तब तक हम उसके ज्ञान व शक्ति के दिव्य लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे। इसलिए स्वाध्याय वह माध्यम है, जो शक्ति व ऊर्जा को सात्विक रूप में ग्रहण करने में मदद करता है।

2.0 स्वाध्याय का अर्थ एवं परिभाषा

स्वाध्याय पद के दो भाग हैं– 'स्व' और 'अध्याय'। 'स्व' पद के चार अर्थ है– आत्मा, आत्मीय, ज्ञाति और धन।[i]

'अध्याय' से तात्पर्य है– चिन्तन, मनन अथवा अध्ययन करना। तत्सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन तथा 'प्रणव' आदि का जप करना 'स्वाध्याय' है।

स्वाध्याय के स्वरूप को व्याख्याहित करते हुए कहा गया है–

आत्मतत्वे पदेश श्रवणमननिदिध्यासनमेव स्वाध्याय॥[ii]

अर्थात् आत्म-तत्व के उपदेश सुनना, मनन करना एवं निदिध्यासन करना ही स्वाध्याय है; जो मानसिक उन्नति के मार्ग को सुदृढ करता है।

स्वयं का अध्ययन अथवा अपने प्रति जागरूक होकर अपनी भावनाओं व श्वास का अवलोकन करना ही स्वाध्याय है। भावनाएँ एवं विचार किस प्रकार उठते रहते है? हमारे भीतर क्या घट रहा है? इन सबका (स्वयं का) अध्ययन एवं अवलोकन करना ही स्वाध्याय है।

3.0 सत्-शास्त्रों एवं ग्रन्थों का अध्ययन

स्वाध्याय के लिए हमें सत्-शास्त्रों का अध्ययन करना होता है, जो कि 'स्वाध्याय' का स्थूल रूप माना जाता है, जिसके द्वारा हम आध्यात्मिक चेतना का ज्ञान पाते हैं। इसमें "वेद, उपनिषद्, गीता आदि शास्त्र, महापुरुषों के ग्रन्थ व भाष्यों आदि का पठन-पाठन और ॐकार, गायत्री या किसी भी इष्ट-देव के मन्त्र का जप करते हैं।"[iii] गायत्री मन्त्र के अर्थ को हमें सहज रूप में स्वीकार करना होगा। गायत्री मन्त्र के सम्बन्ध में मनु महाराज लिखते हैं–

ओंकारपूर्वि कास्तिस्त्रो महाव्याहृतयो ऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेय ब्रह्मणो मुखम्॥[iv]

अर्थात् तीन मात्रा वाले ओंकारपूर्वक तीन महाव्याहृति और त्रिपदा सावित्री को ब्रह्म का मुख (द्वार) जानना चाहिये।

स्वः (स्वयं) को जानने के लिए गायत्री मन्त्र सशक्त माध्यम है, क्योंकि इस मन्त्र का क्षेत्र सूक्ष्म और विशाल

है। यजुर्वेद के अनुसार, गायत्री मन्त्र का मनन भी आवश्यक है–

ओ३म् भूर्भुवः स्वः।
तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।[v]

उस प्राणस्वरूप दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप, परमात्मा को हम अन्तरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करें।
गायत्री मन्त्र में त्रिपदा – अर्थात् तीन मात्राएँ, तीन महाव्याहृतियाँ और तीन पाद का वर्णन किया गया है।
गायत्री मन्त्र का महत्त्व इस श्लोक से भी पता लगता है, जिसमें इसे पापकर्मों का शोधक कहा गया है–

गायत्र्यास्तु परं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम्।
महाव्याहृतिसंयुक्ता प्रणवेन च संजपेत्॥[vi]

अर्थात् गायत्री से बढ़कर पापकर्मों का शोधक, दूसरा कुछ भी नहीं है। प्रणव (ओंकार) सहित तीन महाव्याहृतियों से युक्त गायत्री मन्त्र का जाप करना चाहिये।
इसी प्रकार वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थों के अध्ययन से हम स्व के प्रति जागृति होते हैं, तथा उस भाव चेतना को समझ पाते हैं; जो हमारा मूल है, जिसमें हमें एकाकार होना है। शास्त्र, ग्रन्थ आदि स्थूल माध्यम जरूर है, परन्तु ये भी हमारे लिए प्राथमिक साधन बनते हैं। सूक्ष्म में लीन होने के लिए इनसे ही हमें मार्ग मिलता है, जिसके माध्यम से हम कुशलतापूर्वक जागरण में प्रवेश कर पाते हैं। सद्-शास्त्रों व ग्रन्थों के माध्यम से ही हम सत्य-असत्य में भेद कर पाने में सक्षम हो पाते हैं; भ्रान्ति व वृतियों को समझ कर उनका समाधान करने की स्थिति में पहुँच पाते हैं। इसलिए स्वाध्याय के प्रारंभिक कदम हमें इन ग्रन्थों व शास्त्रों के द्वारा ही आगे बढ़ाने होंगे।
अतः इनका महत्व गहन और आवश्यक है; क्योंकि इनमें दिये गये सूत्र व श्लोक और वाणी परमात्मा की ही अभिव्यक्ति है।

4.0 आत्म-स्वीकृति

आत्म-स्वीकृति को हम स्वाध्यय का सूक्ष्म रूप कह सकते हैं। आत्म-स्वीकृति दो शब्दों के मेल से बना आत्म + स्वीकृति; अर्थात् मैं जैसा हूँ, वैसा अपने आप को स्वीकार करना। क्योंकि जब तक हम अपने अन्दर इस भाव की स्थापना नहीं करेंगे, तब तक हम स्वयं को जान ही नहीं पायेंगे तथा अपने ज्ञान-अज्ञान में भेद भी नहीं कर सकेंगे। आत्म-स्वीकृति को साधने के लिए हमें विभिन्न प्रकार के यौगिक अभ्यास करने होंगे। इनके माध्यम से अपनी सुषुप्त अन्तर्शक्ति के अन्वेषण हेतु साधक को स्वीकृति के स्तर तक पहुँचना होगा।[vii]

हमें अपने अन्दर विकारों की पहचान करके सहजता व ईमानदारी से यह भी स्वीकार करना होगा कि भ्रान्ति से ग्रस्त यह चित्त अभी पूर्णतः निर्मल व व्याधिमुक्त नहीं हुआ है। जिससे हमारा अहंकार दूर होने

की संभावना बढ़ेगी और हम स्व- जागरण के मार्ग पर अग्रसर हो पायेंगे। हमारे अन्दर सहज स्वीकारिता भाव का विस्तार होगा, जो कि 'स्वाध्याय' का एक सशक्त माध्यम है। आत्म-स्वीकृति शब्द-मात्र नहीं है, अपितु यह वह मार्ग है, जिसको अपनाना सरल नहीं है; क्योंकि साधारणतः मनुष्य अपनी भ्रान्ति व कमीयों को स्वीकार करने में गुरेज करता है, तथापि इससे व्यक्ति के 'अहं' को चोट पहुँचती है और वह यह मानने को तैयार ही नहीं होता कि वह अज्ञान से ग्रस्त है। जो व्यक्ति सहजता से यह स्वीकार कर लेता है कि उसके अन्दर दोष हैं तथा वह समर्पण-भाव से उन्हें दूर करने का प्रयास करता है, तो इस बात की पूर्ण संभावना है कि व मनुष्य 'स्वाध्याय' के उद्देश्य को पाने में अवश्य सफल होगा।

जो व्यक्ति आत्म-स्वीकृति की पद्धति अपना लेता है, वह 'स्थितप्रज्ञ' के मार्ग पर चल पड़ता है। श्रीकृष्ण अर्जुन को स्थितप्रज्ञ के बारे में बताते हुए कहते हैं–

प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्।
आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते॥[viii]

हे अर्जुन! जिस काल में यह पुरुष, मन में स्थित सम्पूर्ण कामनाओं को भली-भाँति त्याग देता है और आत्मा से आत्मा में ही संतुष्ट रहता है, उस काल में वह 'स्थितप्रज्ञ' कहा जाता है।

इस प्रकार आत्म-स्वीकृति 'स्वाध्याय' का वह रूप है, जिस के माध्यम से व्यक्ति भ्रान्ति, अज्ञान व अहंकार को त्याग कर सत्य के मार्ग पर चल आत्मसाक्षात्कार कर पाता है यद्यपि यह मार्ग सरल नहीं है, परन्तु परमात्मा को पाना है तो इस माध्यम को अपनाना होगा अन्यथा भटकाव की संभावना बनी रहेगी।

5.0 अन्तर्बोध

यह 'स्वाध्याय' के लक्ष्य को प्राप्त करने तथा चेतना के निरीक्षण का सशक्त माध्यम है। अन्तर्बोध 'स्वाध्याय' का सूक्ष्म मार्ग है, जिसे हम स्थूल मार्ग से प्राप्त करते हैं अथवा ये कहें कि यह स्थूल माध्यम का परिणाम है, जिससे स्वयं का निरीक्षण कर पाने में सहायता मिलती है। अन्तर्बोध की दीप्ति से हमें विश्वास होता है कि हमारा विचार सही है तथा हमें इसका अनुकरण करना है।

इस प्रकार का प्रमाण हमारे चेतन मन या अतीन्द्रिय व्यक्तित्व की गहराई से उत्पन्न होता है तथा हम इसे सत्य और यथार्थ मान लेते हैं। यही वह यथार्थ बोध है, जिसकी प्राप्ति की कामना सभी योगियों द्वारा की जाती है। वस्तुतः क्रिया-योग एक ऐसा विज्ञान है, जिसके द्वारा हम अपनी आन्तरिक-सत्ता या जीवन की आन्तरिक संरचना की अनुभूति प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। यह जीवन की कृत्रिम या सतही संरचना के अनुभव का मार्ग नहीं है।

अन्तर्बोध का क्षेत्र विशाल व गहन है, जिसे समझने के लिए स्वामी योगानन्द परमहंस जी का यह विचार समझना होगा– "अन्तर्बोध[ix] वह मन्दिर है, जिसे ईश्वर सर्वाधिक प्रेम करते हैं; क्योंकि वहाँ मौन एवं शान्ति का मन्दिर है। जब भी आप इस सुन्दर मन्दिर में प्रवेश करें, तो अशान्ति और चिन्ताओं को छोड़कर आया करें। यदि आप उन्हें नहीं छोडेंगे, तो ईश्वर आपके पास नहीं आ सकेंगे।"

अन्तर्बोध के माध्यम से हमारी उप-वृत्तियों को अभिभूत, शान्त और सही दिशा प्रदान करने के बाद

हमारी चेतना बाह्य जगत से आन्तरिक अनुभूतियों की ओर मुड़ती है। जब अन्तर्देशी क्षमता व्यक्तिवत की सहज अभिव्यक्ति बन जाती है, तब बाह्य, ऐन्द्रिय और तथ्यगत प्रमाण, मन के क्षेत्र में कार्य करना बन्द कर देते हैं और व्यक्ति अन्तर्ज्ञान के सहारे जीने लगता है। ऐसा होते ही आत्म-प्रकृति के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उस प्रकृति का अनुभव एक आन्तरिक अनुभव है, जिसे ध्यान या समाधि की अनुभूति में रूपान्तरित किया जा सकता है। व्यक्ति के मन को आत्मा से जोड़ने हेतु अन्तर्बोध अनुभव का उपयोग किया जा सकता है। अन्तर्बोध वह माध्यम है, जिसके द्वारा हम विषय ज्ञान या मिथ्या ज्ञान को दूर कर सद्ज्ञान या प्रमाणिक ज्ञान को प्राप्त करते हैं। मिथ्या ज्ञान का वर्णन करते हुए महर्षि पतंजलि कहते हैं–

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्॥[x]

अर्थात् वह ज्ञान जो पदार्थ के वास्तविक ज्ञान में प्रतिष्ठित नहीं है। इस प्रकार अज्ञान की पहचान करके सत्य-मार्ग पर चलने में अन्तर्बोध प्रबल माध्यम है, जो कि 'स्वाध्याय' का ही सूक्ष्म रूप है। अन्तर्बोध शब्द-मात्र न होकर स्वयं को जानने की एक सम्पूर्ण पद्धति है; क्योंकि 'बोध' शब्द एक साधना है, जिसे मनुष्य तपस्या व आत्म-विश्लेषण के बाद प्राप्त कर पाता है और 'अन्तर्बोध' इससे भी सूक्ष्म और प्रभावी प्रक्रिया है, जिसे प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को 'स्वाध्याय' के स्वरूप को समझना होगा और उसे अपनाकर अन्तर्बोध तक पहुँचना होगा, जिससे वह मुक्ति मार्ग को सफलतापूर्वक स्वीकार कर सके।

6.0 गहन सजगता

'स्वाध्याय' एक गहन सजगता है। 'तप' हमें सहज संयम की मंजिल पर ले जाता है; परन्तु 'तप' के बाद संभावना होती है कि व्यक्ति के अन्दर 'तपस्वी' का अहंकार बोध बचा रह गया हो। जिसे हम गहन सजगता से पहचान सकते हैं तथा उसे दूर कर सकते हैं। 'स्वाध्याय' के विषय में 'ओशो' बतलाते हैं- "पतंजलि जो स्वाध्याय का अर्थ बताते हैं, वही अर्थ स्व-स्मरण का है; जिसे बुद्ध 'सम्यक्बोध' कहते है, जिसे जीसस या जे. कृष्णमूर्ति 'ज्यादा सजग हो जाना' कहते हैं।"[xi]

ज्यादा सजग होने का अर्थ है- अपने शरीर की हर संवेदना या क्रिया के प्रति जागृत हो जाना। जब हम ज्यादा कुछ कोशिश नहीं करते, बस आत्म-बोध करते रहते हैं तथा साक्षी भाव से द्दष्टा बने रहते हैं; तब हमारी ऊर्जा ज्यादा मात्रा में बच जाती है और फिर वह ऊर्जा रूपांतरित होती है। यदि हमारे पास पर्याप्त परिपूर्ण ऊर्जा नहीं होती, तो हम जागरूक नहीं हो सकते। सतही ऊर्जा के बिंदु पर, निम्न उर्जा के तल पर हम जागरूक नहीं हो सकते, उसके लिये परिपूर्ण ऊर्जा की आवश्यकता होती है। एक सहज व्यक्ति के पास इतनी अधिक ऊर्जा बची रहती है कि सूक्ष्मतम परतों तक वह और ज्यादा ऊंचे उठती है, वह एक शिखर बन जाती है, एक ऊर्जा-स्तंभ। अब तुम स्वयं का निरीक्षण करते हो। तुम्हारे विचार, भावनाओं, अनुभूतियों के सबसे अधिक सूक्ष्म तलों पर भी तुम ध्यान कर सकते हो; अर्थात् 'स्वाध्याय' को प्राप्त कर सकते हो।[xii]

गहन सजगता से ही 'स्वाध्याय' घटित होता है और 'स्वाध्याय' से परमात्मा को पाया जा सकता है। इसी

क्रम में व्यास जी अपने भाष्य में लिखते हैं–

स्वाध्यायोगसम्पत्त्या परमात्मा प्रकाशते॥[xiii]

स्वाध्याय और योग, इन दोनों सम्पत्तियों से परमात्मा प्रकाशित होते हैं। जीवन में अधिक सजगता को अपनाने से ही मोक्ष मार्ग के द्वार खुल सकते हैं, जिसके माध्यम से हम परम-आनन्द को प्राप्त कर सकते हैं। सजगता और संयम का पालन 'स्वाध्याय' को साधने का प्रबल साधन है। अधिक सजगता का अर्थ है- जीवन की प्रक्रियाओं या जटिलताओं को जागरूक होकर, साक्षी भाव से जानना व समझना। अधिक सजग होकर ही हम स्वयं का अध्ययन सही रूप में कर पायेंगे तथा अपनी वृत्तियों का त्यागकर, अज्ञान को समझकर, ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हो पायेंगे।
इस प्रकार गहन सजगता 'स्वाध्याय' का वह रूप है, जिसके माध्यम से स्व्यं को आत्मबद्ध करने में सफलता मिल पाती है और हमारे अन्तःकरण में हो रही प्रतिक्रिया का निरीक्षण कर हम उस पर नियंत्रण कर पाने में सक्षम होते हैं।

7.0 आत्म-विश्लेषण

आत्म-विश्लेषण को 'स्वाध्याय' का ही स्वरूप माना जाता है। जब हम स्थूल ज्ञान ग्रहण कर आत्मसात् करते हैं और स्वयं में हो रहे आध्यात्मिक बदलाव का अनुभव करते हैं, तो इसे आत्म-विश्लेषण कहा जाता है। आत्म-विश्लेषण दो पदों से मिलकर बना है– आत्म + विश्लेषण, अर्थात् स्वयं का साक्षात्कार करना। आत्म-स्वीकृति के माध्यम से हम स्वयं को इतना दृढ़ बनाते हैं कि अपनी कमियों को सहज रूप से स्वीकार करते हैं तथा उन कमियों का विश्लेषण कर, उन्हें दूर करने का प्रयास करते हैं।
आत्म-विश्लेषण "जीवन पर स्वामित्व की कुंजी" है।[xiv] जिसके माध्यम से हम अहंकार की सीमाओं को छोड़कर आत्म-उन्नति के विशाल क्षेत्र में विचरण कर पाते हैं। जिस प्रकार समय गतिमान है, उसी प्रकार परमात्मा में, अपने जीवन के विशाल विस्तार के लिए आत्माओं की प्रगति होती रहनी चाहिए। जीवन में अपने अति महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य पालन की पहल, प्रायः मानवीय आदतों के एकत्रित कचरे में दबी रहती है। हमें उनके निरर्थक प्रभाव से स्वयं को मुक्त रखना चाहिए और अपनी निष्कामता की सफलता के लिए प्रयासरत रहना चाहिए; जीवन तभी सार्थक है।
आत्म-विश्लेषण[xv] के बिना मानव यंत्रवत जीवन जीता है; अर्थात् जो व्यक्ति आत्म-विश्लेषण की पद्धति को नहीं अपनाता, वह 'स्वाध्याय' के आनन्द को प्राप्त नहीं कर पाता और सारा जीवन एक मशीन अथवा यंत्र की भांति व्यतीत कर देता है। कोई जीवन की चेतना का अनुभव नहीं कर पाता और न ही मुक्ति का अनुसरण कर सकता है; क्योंकि उसे लगता है कि भौतिक संम्पदा ही सब कुछ है, इसी से वह हर सुख प्राप्त कर सकता है। जिस कारण वह और प्रबल व्याधियों से ग्रस्त होता जाता है तथा परमात्मा द्वारा दिया यह दिव्य जीवन अज्ञान के कारण नष्ट करता चला जाता है। आत्म-विश्लेषण के बिना मनुष्य निर्जीवता का जीवन जीता है। जैसे मशीन होती है, मात्र किसी भोग के लिए। आत्म-विश्लेषण के बिना सही-गलत,

सत्य-असत्य के भेद को जानना असंभव है; और जब तक हमें सत्य मार्ग का आत्मसात् नहीं होगा, तब तक हम मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकते हैं। आत्म-विश्लेषण के मार्ग को अपनायेंगे बिना हम परमात्मा ही सत्यता को नहीं जान पायेंगे, जिसमें हमें लीन होना है–

नित्यं पूर्णमनाधनन्तं ब्रह्म परम्। तदैवकमैवाद्वैतं सत्॥

अर्थात् परम-ब्रह्म नित्य, पूर्ण, अनादि व अनन्त है। वही एकमेव, अद्वैत सत् भी है। इस प्रकार आत्म-विश्लेषण स्वाध्यय का वह स्थूल व सूक्ष्म मार्ग है, जिसके माध्यम से व्यक्ति समग्र रूप से स्वयं को अध्यात्मिक प्रवृति में रूपांतरण कर सकता है और उच्च लक्ष्य को प्राप्त सकता है; जिसके लिए परमात्मा ने हमें यह जीवन दिया है।

8.0 ज्ञानयोग (स्वाध्याय का स्वरूप)

ज्ञानयोग को गहनता से समझने पर हम पाते हैं कि यह 'स्वाध्याय' का प्रबल स्वरूप है, जिसके माध्यम से हम अज्ञानता को दूर कर स्वयं को जान पाते हैं। यदि बन्धनों से छुटकारा पाना है, तो इसके लिए अज्ञान से मुक्त होना होगा; क्योंकि यह अज्ञान ही समस्त इच्छाओं और कर्मों का जनक है। ज्ञान का अर्थ है– अज्ञान, काम, कर्म की श्रृंखलओं से मुक्ति। ज्ञान के माध्यम से हम स्वयं का साक्षात्कार कर, अज्ञान की बेड़ियों से मुक्त हो पाते हैं, जो कि बन्धन का मूल कारण है। गीता में स्वाध्याय और ज्ञान के बारे में कहा है–

स्वाध्ययज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥[xvi]

अर्थात् कितने ही अहिंसा आदि तीक्ष्ण व्रतों से युक्त यत्नशील पुरूष स्वाध्याय ज्ञानयज्ञ करने वाले हैं। 'स्वाध्याय' को सहज रूप में स्वीकार करना सरल कार्य नहीं है, इसके लिए दृढ़ इच्छा-शक्ति का होना आवश्यक है; उसी प्रकार सद्ज्ञान को पाने के लिए भी होश आवश्यक साधन है। ज्ञान ही वह माध्यम जिससे हम मोक्ष के सत्य मार्ग को ज्ञात कर पायेंगे। अन्यथा मोक्ष को पाखण्ड का रूप देकर बहुत समय से संसार में भ्रान्ति का विस्तार होता रहा है। ज्ञान का महत्त्व को समझाते हुए गीता में कहा है–

न हि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति॥[xvii]

इस संसार में ज्ञान के समान पवित्र करने वाला नि:संदेह कुछ भी नहीं है। उसको कितने ही काल से कर्मयोग के द्वारा शुद्ध अन्त:करण हुआ मनुष्य अपने आप ही आत्मा में पा लेता है। अतः ज्ञानयोग को मुक्ति के लिए पवित्र साधन माना गया है; क्योंकि ज्ञान से हम स्वयं का अध्ययन कर पाते हैं, अपना आध्यात्मिक विकास करने में सक्षम हो पाते हैं। ज्ञानयोग के माध्यम से हम स्वयं को जागृत करके 'समता' को प्राप्त हो पाते हैं। श्रीकृष्ण ज्ञानी पुरुष के लक्षणों को बताते हुए कहते हैं–

दुःखे ध्वनुद्विनमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥[xviii]

अर्थात् दु:ख में जिसका मन उद्विग्न नहीं होता, सुख में जिसकी स्पृहा निवृत्त हो गयी है, जिसके मन से राग, भय और क्रोध नष्ट हो गये हैं, वह मुनि 'स्थितप्रज्ञ' कहलाता है। स्थितप्रज्ञा होने के लिए हमें ज्ञानयोग को साधना होगा। जब तक हम ज्ञानयोग के माध्यम से आत्म-चिंतन नहीं करेंगे, तब तक हम अपने अज्ञान की पहचान नहीं कर पायेंगे, जो मोक्ष-मार्ग की प्रबल बाधा है। गीता में इसे ज्ञानयोग का नाम दिया गया है और महर्षि पतंजलि ने इसे स्वाध्याय कहा है– "स्वाध्याय"[xix] स्वयं का अध्ययन है, स्वयं के बारे में गहन चिंतन ही स्वाध्याय है।

9.0 संदर्भ

[i] शास्त्री, उदयवीर आचार्य – योगदर्शनम्; पृ० 124
[ii] गिरि, श्रीयूकेवर स्वामी – कैवल्यदर्शनम; पृ० 25
[iii] गोयन्दका, हरिकृष्णदास – योगदर्शन, गीताप्रेस गोरखपुर; पृ० 43
[iv] श्री ओमानन्दतीर्थ जी, स्वामी – पातञ्जलयोगप्रदीप; पृ० 321
[v] द्विवदी, डॉ० कपिल; यजुर्वेद – सुभाषितावली; 36, 3
[vi] श्री ओमानन्दतीर्थ जी, स्वामी – पातञ्जलयोगप्रदीप; पृ० 322
[vii] सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द – योगदर्शन; पृ० 99
[viii] श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर; पृ० 41
[ix] योगानन्द, श्री परमहंस – मानव की निरंतर खोज; पृ० 121
[x] तीर्थ श्री स्वामी ओमानन्द – पातञ्जलयोगप्रदीप; पृ० 190
[xi] ओशो – पतंजलि योगसूत्र; भाग - 2, पृ० 214
[xii] ओशो – पतंजलि योगसूत्र; भाग - 2, पृ० 214
[xiii] तीर्थ, श्री स्वामी ओमानन्द – पातञ्जलयोगप्रदीप; पृ० 255
[xiv] योगानन्द, श्री परमहंस – मानव की निरन्तर खोज; पृ० 82
[xv] योगानन्द, श्री परमहंस – मानव की निरन्तर खोज; पृ० 82
[xvi] श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर; पृ० 69
[xvii] श्रीमद्भगवद्गीता – गीताप्रेस, गोरखपुर; पृ० 72
[xviii] श्रीमद्भगवद्गीता – गीता एवं योग की प्रासंगिकता; पृ० 84
[xix] वी० के० एस० आयंगर – पतंजलि योगसूत्र; पृ० 53